TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182588

UNIVERSAL
LIBRARY

सतरंगिनी

संस्करण

सेंट्रल बुक डिपो

इलाहाबाद

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.6 B11Sa P. G. Accession No. H193

Author बच्चन.

Title सतरंगिनी. 1948.

This book should be returned on or before the date last marked below.

सतरंगिनी

बच्चन

Hindi Section Library
OSMANIA UNIVERSITY
No.....

सेंट्रल बुक डिपो
इलाहाबाद

प्रकाशक
सेंट्रल बुक डिपो
इलाहाबाद

P. G.

इस पुस्तक का पहला संस्करण भारती-भंडार, प्रयाग से
प्रकाशित हुआ था।

पहला संस्करण—अप्रैल, १९४५
दूसरा संस्करण—मई, १९४८

Post Graduate Library
College of Arts & Commerce

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस,
इलाहाबाद

सतरंगिनी

सन् १९४२-४४ में

लिखित

घन-मन-तंत्री को तेज-तड़ित छू लेती,
जीवन के नभ में नव रस बरसा देती।

बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

१—सूत की माला
२—खादी के फूल
३—मिलन यामिनी
४—हलाहल
५—बंगाल का काल
६—आकुल अंतर
७—एकांत संगीत
८—निशा निमंत्रण
९—मधुकलश
१०—मधुबाला
११—मधुशाला
१२—खैयाम की मधुशाला
१३—प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग } कविताएँ
१४—प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग }
१५—प्रारंभिक रचनाएँ—तीसरा भाग—कहानियाँ
१६—बच्चन के साथ क्षण भर

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए प्रकाशक से बच्चन-रचनावली की विवरण पत्रिका मँगाएँ।

विज्ञापन

बच्चन के प्रेमियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमने उनकी समस्त रचनाओं को प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर ले लिया है।

हमारा प्रयत्न होगा कि हम उनकी नई-पुरानी सभी पुस्तकों को सुरुचिपूर्ण आकार-प्रकार देकर आपके सामने उपस्थित करें।

'सतरंगिनी' का दूसरा संस्करण आपके आगे है। हमें आशा है आपको पसंद आएगा। शीघ्र ही उनकी अन्य अप्राप्य रचनाएँ भी नवीन संस्करणों में हम आपके सामने रख सकेंगे, कुछ नवीन रचनाएँ भी।

हम आपके सहयोग के प्रार्थी हैं।

—प्रकाशक

संबोधन

तेजी,

उस दिन अमिताभ को तूने मेरी गोद में रक्खा था, आज मैं सतरंगिनी को तेरी गोद में रखता हूँ ;

याद मुझे वह दिन जब तेरे-
मेरे आँसू एक हुए,
पल में परिवर्तित जब तेरे-
मेरे भाव अनेक हुए !
और आज तेरी गोदी में
ध्वनित अमित का हास हुआ,
और आज मेरे मानस में
राग - रंग - रस - रास हुआ !
अभिनंदित अभिषिक्त अमित में
अभिमत अभिलाषा मेरी,
सतरंगिनी तरंगित नभ में
पुण्य प्रेरणा पर तेरी !

आ मिलकर आशीष दें कि हमारे प्रणय-परिणय के ये युगुल प्रतीक चिरायु हों।

बच्चन

सूची

शीर्षक पृष्ठ

प्रवेश गीत

१ इंद्रधनुष की छाया में १

पहला खंड

१ सतरंगिनी ५
२ वर्षा समीर ८
३ कोयल १२
४ पपीहा २७
५ जुगनू ३१
६ नागिन ३५
७ मयूरी ५३

दूसरा खंड

१ अभावों की रागिनी ५५
२ अँधेरे का दीपक ६२
३ यात्रा और यात्री ६९
४ पथ की पहचान ७५
५ नंदन और बगिया ८१
६ जो बीत गई ८६
७ कामना ८९

शीर्षक			पृष्ठ
तीसरा खंड			
१ प्रतिकूल	..	..	९२
२ सम्मानित	..	..	९५
३ अजेय	..	..	९७
४ अधिकारी	..	..	१००
५ प्रत्याशा	..	..	१०२
६ चेतावनी	..	..	१०४
७ निर्माण	..	..	१०५
चौथा खंड			
१ दो नयन	..	..	१०९
२ जादू	..	..	१११
३ तूफान	..	..	११३
४ मृगतृष्णा	..	..	११६
५ प्यार और संघर्ष	..	..	११८
६ तुम नहीं हो	..	..	१२१
७ नई झनकार	..	..	१२३
पाँचवाँ खंड			
१ मुझे पुकार लो	..	..	१२७
२ कौन तुम हो	..	..	१३१
३ वेदना का गीत	..	..	१३५
४ तुम गा दो	..	..	१३८
५ जयमाल	..	..	१४१

शीर्षक			पृष्ठ
६	लौटा लाओ	.. ..	१४७
७	अभिसार के पल	.. ..	१५१

छठा खंड

१	नव वर्ष	..	१५४
२	नव दर्शन	..	१५५
३	एक दाह	..	१५६
४	एक स्नेह	..	१५७
५	नवल प्रात	..	१५८
६	नूतन सृष्टि	..	१५९
७	नवीन उत्तरदायित्व	.. .	१६०

सातवाँ खंड

१	प्रेम	..	१६१
२	जग	.	१६२
३	जीवन	..	१६३
४	काल	..	१६४
५	कर्तव्य	.	१६६
६	साधना	..	१६८
७	विश्वास	..	१७१

सतरंगिनी

प्रवेश गीत

इंद्रधनुष की छाया में

(१)

तूने देखी दुनिया जिसपर
उतरी ऊषा की लाली,
तूने देखी दुनिया जिसपर
बिखरी किरणों की जाली,
तूने देखी दुनिया जिसपर
अँधियाली संध्या छाई,

तूने देखी दुनिया जिसपर
फैल गई रजनी काली;

किंतु कभी क्या तूने देखा
जगती का सस्मित आनन
इंद्रधनुष की छाया में ?

(२)

अलस नयन से तूने देखा
उठ ऊषा का अँगड़ाना,
सजग नयन से तूने देखा
रवि का रथ चढ़कर आना,

धीमी संध्या की गति देखी
तूने शंकित नयनों से,

भीत नयन से तूने देखा
रजनी का ताना-बाना;

किंतु कभी क्या तूने देखा
जगती को विस्मित लोचन
इंद्रधनुष की छाया में ?

(३)

प्रातः ने देखा देवालय
में मेरा पूजन - अर्चन,
दिन की दुनिया ने, धंधों से
छाया अंगों पर श्रम - कण,
संध्या ने मेरे प्रकाश की
धुँधली - सी रेखा देखी,
अपलक नेत्रों से रजनी ने
देखा मेरा सूनापन;
किंतु किसी ने देखा मेरा
मानस - मंथन, उर उन्मन
इंद्रधनुप की छाया में ?

(४)

उदय शिखर से अरुण शिखा की
उठी जागरण की वाणी,
ऋतुपति के उपवन से कूकी
कुहु - कुहु कोयल मस्तानी,
कातर स्वर से बुलबुल बोली
अस्ताचल की घाटी में,

प्राण पपीहे का पागल स्वर
चीर चला पत्थर-पानी;

एक विहंगम भरे हृदय से
करता बैठा स्वर साधन
इंद्रधनुष की छाया में।

(५)

मेरे जीवन के प्रभात की
स्वाभाविक स्वर्गिक बोली,
डूब गई उस रव में जिसमें
गाती चिड़ियों की टोली,

दिन को तूती बोली पर
नक्कारों की हुंकारों में,

सूनी और अँधेरी रातों
में डर-डर जिह्वा डोली;

ध्वनित हृदय के नभ से होगा
फूटा जो मेरा गायन
इंद्रधनुष की छाया में!

पहला खंड—

१–सतरंगिनी

(१)

स तरंगिनी, सतरंगिनी !
काले घनों के बीच में,
काले क्षणों के बीच में
उठने गगन में, लो, लगी
यह रँग - बिरंग विहंगिनी !
सतरंगिनी, सतरंगिनी !

(२)

जग में बता वह कौन है,
कहता कि जो तू मौन है,
देखी नहीं मैंने कभी
तुझसे बड़ी मधु भाषिणी !
सतरंगिनी, सतरंगिनी !

(३)

जैसा मनोहर वेश है
वैसा मधुर संदेश है,
दीपित दिशाएँ कर रहीं
तेरी हँसी मृदु हासिनी !
सतरंगिनी, सतरंगिनी !

(४)

भू के हृदय की हलचली,
नभ के हृदय की खलबली
ले सप्त रागों में चली
यह सप्त रंग तरंगिनी !
सतरंगिनी, सतरंगिनी !

(५)

अति क्रुद्ध मेघों की कड़क,
अति क्षुब्ध विद्युत की तड़क
पर पा गई सहसा विजय
तेरी रँगीली रागिनी !
सतरंगिनी, सतरंगिनी !

(६)

तूफ़ान, वर्षा, बाढ़ जब,
आगे खुला यम दाढ़ जब,
मुसकान तेरी बन गई
विश्वास, आशा दायिनी !
सतरंगिनी, सतरंगिनी !

(७)

मेरे दृगों के अश्रुकण
को पार करती किस नयन
की तेजमय, तीखी किरण,
जो हो रही चित्रित हृदय
पर एक तेरी संगिनी !
सतरंगिनी, सतरंगिनी !

२–वर्षा समीर

(१)

बरसात की आती हवा

वर्षा - धुले आकाश से,
या चंद्रमा के पास से,
या बादलों की साँस से;

मधुसिक्त, मदमाती हवा,
बरसात की आती हवा।

(२)

यह खेलती है ढाल से,
ऊँचे शिखर के भाल से,
आकाश से, पाताल से,
झकझोर - लहराती हवा ;
बरसात की आती हवा ।

(३)

यह खेलती सर - वारि से,
नद-निर्झरों की धार से,
इस पार से, उस पार से,
झुक-झूम बल खाती हवा ;
बरसात की आती हवा ।

(४)

यह खेलती तरुमाल से,
यह खेलती हर डाल से,
लोनी लता के जाल से,
अठखेल - इठलाती हवा ;
बरसात की आती हवा ।

(५)

इसकी सहेली है पिकी,
इसकी सहेली चातकी,
संगिन शिखिन, संगी शिखी,
यह नाचती - गाती हवा ;
बरसात की आती हवा ।

(६)

रँगती कभी यह इंद्रधनु,
रँगती कभी यह चंद्रधनु,
अब पीत घन, अब रक्त घन,
रँगरेल - रँगराती हवा ;
बरसात की आती हवा ।

(७)

यह गुदगुदाती देह को,
शीतल बनाती गेह को,
फिर से जगाती नेह को;
उल्लास बरसाती हवा ;
बरसात की आती हवा ।

(८)

यह शून्य से होकर प्रकट,
नव हर्ष से आगे झपट,
हर अंग से जाती लिपट,
आनंद सरसाती हवा ;
बरसात की आती हवा ।

(९)

जब ग्रीष्म में यह जल चुकी,
जब खा अँगार-अनल चुकी,
जब आग में यह पल चुकी,
वरदान यह पाती हवा ;
बरसात की आती हवा ।

(१०)

तू भी विरह में दह चुका,
तू भी दुखों को सह चुका,
दुख की कहानी कह चुका,
मुझसे बता जाती हवा ;
बरसात की आती हवा ।

३--कोयल

(१)

कौन तपस्या करके, कोकिल,
इतना सुमधुर सुर पाया ?
कौन तपस्या करके, कोकिल,
काली कर डाली काया ?

(२)

वह सुर, जिसको सुनकर सोया
युग का मलयानिल जागा,
जिसको सुन मधुवन पर छाया
युग-युग का आलस भागा।

(३)

जिसको सुन तरु-कंकालों पर
सहसा दौड़ी हरियाली,
सजी नवल, कोमल किसलय से
मधुवन की डाली-डाली।

(४)

बहुरंगी सुमनों से लदकर
लगीं झूमने शाखाएँ,
जिन्हें देखकर नंदन वन की
तरु - मालाएँ शरमाएँ।

(५)

बैठी उन डालों के ऊपर
विहगावलि गानेवाली,
गूँजी उन सुमनों के ऊपर
मधुरस भीनी भ्रमराली।

(६)

फैली थी जिस जगह उदासी
महामरण की छाया-सी,
वहाँ अमरता खेल रही है
बन सुखमामय सुखरासी।

(७)

जब-जब तू कूका करती है,
प्रश्न उठा करता मन में,
इतना प्राणप्रद स्वर पाया
कैसे तूने जीवन में ?

(८)

कौन तपस्या करके, कोकिल,
इतना सुमधुर सुर पाया ?
कौन तपस्या करके, कोकिल,
काली कर डाली काया ?

(९)

किसी जन्म में किसी देश की,
कोकिल, तू होगी रानी,
होगी सम्मुख सुख-सुविधा की
सब सामग्री, कल्याणी।

(१०)

कभी घूमते राजा के सँग
पहुँची होगी मधुवन में,
देख वहाँ कोई तरु सूखा
द्रवित हुई होगी मन में।

(११)

एक दिवस इस तरु के ऊपर
हरियाली लहराती थी,
एक दिवस इसकी गोदी में
सुख की चिड़िया गाती थी।

(१२)

मंद - चरण भी यदि मलयानिल
मधुवन में आ जाता था,
पत्ता - पत्ता इस तरुवर का
हिल - हिल सौ बल खाता था।

(१३)

डाल मात्र बच खड़ा हुआ है
जड़वत भयप्रद कंकाली,
छोड़ चुका इसके जीवन की
सारी आशा वन - माली।

(१४)

पूछा होगा राजा से, 'क्या
यह न हरा होगा फिर से ?'
'हरे नहीं होते तरु सूखे,
नियम प्रकृति का युग चिर से।'

(१५)

इस उत्तर से आई होगी
शांति नहीं तेरे मन में,
दिन कितने, रातें भी कितनी
बीती होंगी चिंतन में।

(१६)

'हरे नहीं होते तरु सूखे'—
काँटे - सा गड़ता होगा,
जहाँ देखती होगी रूखा
तरु आगे पड़ता होगा।

(१७)

उस निश्चय से निकली होगी
चिंता तेरे अंतर से,
जिस निश्चय से अर्द्धरात्रि में
गौतम निकले थे घर से।

(१८)

तप करना होगा जिससे हो
सूखे तरु में हरियाली,
तप करना होगा जिससे हो
ज़िंदा फिर मुर्दा डाली।

(१९)

तप करना होगा जिससे हों
कुसुमित द्रुम की शाखाएँ,
तप करना होगा जिससे फिर
मौन विहंगम दल गाएँ।

(२०)

ध्रुव निश्चय ने तोड़े होंगे
ममता, माया के बंधन,
राह किसी वन की ली होगी
छोड़ सभी पुरजन - परिजन।

(२१)

घोर तपस्या करके तूने
क्षीण किया होगा तन को,
कठिन तपश्चर्या में तूने
लीन किया होगा मन को।

(२२)

लिए प्रलोभन भाँति - भाँति के
कामदेव आया होगा,
किंतु देखकर अविचल तुझको
बेहद शरमाया होगा !

(२३)

अग्नि परीक्षा में विजयी हो
और हुई होगी पावन,
तेरे तप के तेजोबल से
डोला होगा इंद्रासन।

(२४)

उतरा होगा इंद्र धरा पर
लेकर देवों की टोली,
खोली होगी तेरे आगे
बहु वरदानों की झोली।

(२५)

जगती का सारा धन-वैभव
कह दे बस तेरा होगा,
तेरे तप के आगे जग क्या,
स्वर्ग सदा चेरा होगा।

(२६)

राज्य अखंड धरा का चाहे
तो ले तू उसकी मलका,
ले चाहे सुरपति का नंदन
चाहे धनपति की अलका।

(२७)

कीर्ति अगर चाहे तो दश दिशि
तेरे यश का गान करें,
तेरे गुण के गीत सुनाते
तारक अंबर में विचरें।

(२८)

जन्म-जन्म में पूरी होंगी
तेरी इच्छाएँ सारी,
बनी हुई तू इसी जन्म में
महा मुक्ति की अधिकारी।

(२९)

बिना किसी संकोच बतादे
जो कुछ तुझको लेना है,
बिना विचारे स्वर्गाधिप को
एवमस्तु कह देना है।

(३०)

विश्व विभव सब नाचे होंगे
तेरी आँखों के आगे,
सूखे तरु की सुधि आते ही
सबके सब होंगे भागे।

(३१)

'हरे नहीं होते तरु सूखे'
ध्वनित हुआ होगा मन में,
ऋषियों की यह पावन वाणी
गूँजी होगी कण-कण में—

(३२)

नत्वहं कामये राज्यं,
न स्वर्गं, नापुनर्भवम्,
कामये दुःखतप्तानाम्
प्राणिनाम् आर्ति नाशनम् ।

(३३)

और कहा होगा यह तूने,
नहीं चाहिए स्वर्ग मुझे,
नहीं चाहिए राज्य धरा का
और नहीं अपवर्ग मुझे ।

(३४)

नहीं चाहिए मुझको सुरपति
का नित नव नंदन कानन,
नहीं चाहिए मुझको धनपति
की अलका का स्वर्ण सदन ।

(३५)

नहीं चाहती दिग्दिगंत में
कीर्ति गान मेरा गूंजे,
नहीं चाहती आकर दुनिया
सादर पद मेरा पूजे।

(३६)

स्वर्ग प्रसन्न हुआ यदि मुझसे
मुझको ऐसा गान मिले,
जिसको सुनकर मरे हुओं को
जीवन का वरदान मिले।

(३७)

जहाँ - जहाँ पतझड़ आया हो,
वहाँ - वहाँ पर मैं जाऊँ,
वहाँ - वहाँ पर मधुऋतु छाए
जहाँ - जहाँ पर मैं गाऊँ।

(३८)

एवमस्तु कह दिया स्वर्ग ने
तूने तप का फल पाया,
धन्य-धन्य ध्वनि हुई गगन में
सुमन सुरों ने बरसाया।

(३९)

तपः पूत काली काया ने
चट कोकिल का रूप लिया,
कूक मंत्र तेरे कंठस्थल
में देवों ने फूंक दिया।

(४०)

अमरों की वरदान बनी तू
नभ में विहरण करती है,
मृत - मूर्च्छित पृथ्वी के ऊपर
अमृत वर्षण करती है।

(४१)

कठिन तपस्या करके तूने
इतना सुमधुर सुर पाया,
और गवाही इस तप की है
तेरी यह काली काया।

(४२)

कौन तपस्या करके, कोकिल,
इतना सुमधुर स्वर पाया ?
कौन तपस्या करके, कोकिल,
काली कर डाली काया ?

४–पपीहा

(१)

कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'
युग - कल्प हैं सुनते रहे,
युग - कल्प सुनते जायँगे,
प्यासे पपीहे के वचन
लेकिन कहाँ रुक पायँगे,
सुनती रहेगी सरज़मीं,
सुनता रहेगा आसमाँ;
कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'

(२)

विस्तृत गगन में घन घिरे,
पानी गिरा, पत्थर गिरे,
विस्तृत मही पर सर भरे,
उमही नदी, निर्झर झरे,
पर माँगती ही रह गई
दो बूँद जल इसकी ज़बाँ;
कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'

(३)

दो बूंद जल से ही अगर
तृष्णा बुझाना चाहता,
दो बूंद जल से ही अगर
यह शांति पाना चाहता,
मरु भूमि के भी बीच में
इसकी कमी होती कहाँ;
कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'

(४)

यह बूंद ही कुछ और है,
यह खोज ही कुछ और है,
यह प्यास ही कुछ और है,
यह सोज़ ही कुछ और है
जिसके लिए, जिसको लिए
जल-थल-गगन में यह भ्रमा;
कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'

(५)

लघुतन विहंगम यह नहीं,
यह प्यास की आवाज़ है,
इसमें छिपा ज़िंदादिलों
की ज़िंदगी का राज़ है,
यह जिस जगह उठती नहीं
है मौत का साया वहाँ;
कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'

(६)

धड़कन गगन की-सी बनी
उठती जहाँ यह रात में,
मेरा हृदय कुछ ढूँढने
लगता इसी के साथ में,
यह सिद्ध करता है कि मैं
जीवित अभी, मुर्दा नहीं,
है शेष आकर्षण अभी
मेरे लिए अज्ञात में;
थमता न मैं उस ठौर भी
यह गूँजकर मिटती जहाँ !
कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'

५—जुगनू

(१)

अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?
उठी ऐसी घटा नभ में
छिपे सब चाँद औ' तारे,
उठा तूफ़ान वह नभ में
गए बुझ दीप भी सारे;
मगर इस रात में भी लौ
लगाए कौन बैठा है ?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

(२)

गगन में गर्व से उठ-उठ,
गगन में गर्व से घिर-घिर,
गरज कहती घटाएँ हैं,
नहीं होगा उजाला फिर;

मगर चिर ज्योति में निष्ठा
जमाए कौन बैठा है ?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

(३)

तिमिर के राज का ऐसा
कठिन आतंक छाया है,
उठा जो शीश सकते थे
उन्होंने सिर झुकाया है;

मगर विद्रोह की ज्वाला
जगाए कौन बैठा है ?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

(४)

प्रलय का सब समाँ बाँधे
प्रलय की रात है छाई,
विनाशक शक्तियों की इस
तिमिर के बीच बन आई;

मगर निर्माण में आशा
दृढ़ाए कौन बैठा है ?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

(५)

प्रभंजन, मेघ, दामिनि ने
न क्या तोड़ा, न क्या फोड़ा,
धरा के और नभ के बीच
कुछ साबित नहीं छोड़ा;

मगर विश्वास को अपने
बचाए कौन बैठा है ?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

(६)

प्रलय की रात में सोचे
प्रणय की बात क्या कोई,
मगर पड़ प्रेम बंधन में
समझ किसने नहीं खोई,

किसी के पंथ में पलकें
बिछाए कौन बैठा है ?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

६–नागिन

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(१)

तू प्रलय काल के मेघों का
कज्जल-सा कालापन लेकर,
तू नवल सृष्टि की ऊषा की
नव द्युति अपने अंगों में भर,

बड़वाग्नि-विलोड़ित अंबुधि की
उत्तुंग तरंगों से गति ले,

रथ युत रवि-शशि को बंदी कर
दृग-कोयों का रच बंदीघर,

कौंधती तड़ित को जिह्वा-सी
विष-मधुमय दाँतों में दाबे,
तू प्रकट हुई सहसा कैसे
मेरी जगती में, जीवन में ?

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

नागिन

(२)

तू मनोमोहिनी रंभा-सी,
तू रूपवती रति रानी-सी,
तू मोहमयी उर्वशी सदृश,
तू मानमयी इंद्राणी-सी,

तू दयामयी जगदंबा-सी,
तू मृत्यु सदृश कटु, क्रूर, निठुर,

तू लयंकरी कालिका सदृश,
तू भयंकरी रुद्राणी - सी,

तू प्रीति, भीति, आसक्ति, घृणा
की एक विषम संज्ञा बनकर,
परिवर्तित होने को आई
मेरे आगे क्षण-प्रतिक्षण में।

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(३)

प्रलयंकर शंकर के सिर पर
जो धूलि-धूसरित जटाजूट,
उसमें कल्पों से सोई थी
पी कालकूट का एक घूँट,

सहसा समाधि कर भंग शंभु
जब तांडव में तल्लीन हुए,

निद्रालसमय, तंद्रानिमग्न
तू धूमकेतु-सी पड़ी छूट;

अब घूम जलस्थल-अंबर में,
अब घूम लोक-लोकांतर में
तू किसको खोजा करती है,
तू है किसके अन्वीक्षण में ?

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

नागिन

(४)

तू नागयोनि नागिनी नहीं,
तू विश्व विमोहक वह माया,
जिसके इंगित पर युग-युग से
यह निखिल विश्व नचता आया,

अपने तप के तेजोबल से
दे तुझको व्याली की काया,

धूर्जटि ने अपने जटिल जूट-
व्यूहों में तुझको भरमाया,

पर मदनकदन कर महायतन
भी तुझे न सब दिन बाँध सके,
तू फिर स्वतंत्र बन फिरती है
सबके लोचन में, तन-मन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(५)

तू फिरती चंचल फिरकी-सी
अपने फन में फुफकार लिए,
दिग्गज भी जिससे काँप उठें
ऐसा भीषण हुंकार लिए,

पर पल में तेरा स्वर बदला,
पल में तेरी मुद्रा बदली,

तेरा रूठा है कौन कि तू
अधरों पर मृदु मनुहार लिए,

अभिनंदन करती है उसका,
अभिवादन करती है उसका,
लगती है कुछ भी देर नहीं
तेरे मन के परिवर्तन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(६)

प्रेयसि का जग के तापों से
रक्षा करनेवाला अंचल,
चंचल यौवन कल पाता है
पाकर जिसकी छाया शीतल,

जीवन का अंतिम वस्त्र कफ़न
जिसको नख से शिख तक तनकर

वह सोता ऐसी निद्रा में
है होता जिसके हेतु न कल,

जिसको मन तरसा करता है,
जिससे मन डरपा करता है,
दोनों की झलक मुझे मिलती
तेरे फन के अवगुंठन में !

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(७)

जाग्रत जीवन का कंपन है
तेरे अंगों के कंपन में,
पागल प्राणों का स्पंदन है
तेरे अंगों के स्पंदन में,

तेरी द्रुत दोलित काया में
मतवाली घड़ियों की धड़कन,

उन्मद साँसों की सिहरन है
तेरी काया के सिहरन में,

अल्हड़ यौवन करवट लेता
अब तू भू पर लुंठित होती,
अलमस्त जवानी अँगड़ाती
तेरे अंगों की ऐंठन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(८)

तू उच्च महत्वाकांक्षा-सी
नीचे से उठती ऊपर को,
निज मुकुट बना लेगी जैसे
तारावलि-मंडित अंबर को,

तू विनत प्रार्थना-सी झुककर
ऊपर से नीचे को आती,

ज़ैसे कि किसी की पद-रज से
ढकने को है अपने सिर को,

तू आशा-सी आगे बढ़ती,
तू लज्जा-सी पीछे हटती,
जब एक जगह टिकती, लगती
दृढ़ निश्चय-सी निश्चल मन में।

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(९)

मलयाचल से मलयानिल-सी
पल बल खाती, पल इतराती
तू जब आती, युग-युग दहती
शीतल हो जाती है छाती,

पर जब चलती उद्वेग भरी
उत्तप्त मरुस्थल की लू-सी

चिर संचित, सिंचित अंतर के
नंदन में आग लगा जाती;

शत हिम शिखरों की शीतलता,
शत ज्वालामुखियों की दहकन,
दोनों आभासित होती हैं
मुझको तेरे आलिंगन में !

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(१०)

इस पुतली के अंदर चित्रित
जग के अतीत की करुण कथा,
जग के यौवन का संघर्षण,
जग के जीवन की दुसह व्यथा;

है झूम रही उस पुतली में
ऐसे सुख-सपनों की झाँकी,

जो निकली है जब आशा ने
दुर्गम भविष्य का गर्भ मथा;

हो क्षुब्ध-मुग्ध पल-पल क्रम से
लंगर-सा हिल-हिल वर्तमान
मुख अपना देखा करता है
तेरे नयनों के दर्पण में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(११)

तेरे आनन का एक नयन
दिनमणि-सा दिपता उस पथ पर,
जो स्वर्ग लोक को जाता है,
जो चिर संकटमय, चिर दुस्तर;

तेरे आनन का एक नेत्र
दीपक-सा उस मग पर जगता,

जो नरक लोक को जाता है,
जो चिर सुखमामय, चिर सुखकर;

दोनों के अंदर आमंत्रण,
दोनों के अंदर आकर्षण,
खुलते-मुँदते हैं स्वर्ग-नरक—
के दर तेरी हर चितवन में !

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(१२)

सहसा यह तेरी भृकुटि झुकी,
नभ से करुणा की वृष्टि हुई,
मृत-मूर्च्छित पृथ्वी के ऊपर
फिर से जीवन की सृष्टि हुई,

सहसा यह तेरी भृकुटि तनी,
नभ से अंगारे बरस पड़े,

जग के आँगन में लपट उठी,
स्वप्नों की दुनिया नष्ट हुई;

स्वेच्छाचारिणि, है निष्कारण
सब तेरे मन का क्रोध, कृपा,
जग मिटता-बनता रहता है
तेरे भ्रू के संचालन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(१३)

अपने प्रतिकूल गुणों की सब
माया तू संग दिखाती है,
भ्रम, भय, संशय, संदेहों से
काया विजड़ित हो जाती है,

फिर एक लहर-सी आती है,
फिर होश अचानक होता है,

विश्वासमयी आशा, निष्ठा,
श्रद्धा पलकों पर छाती है;

तू मार अमृत से सकती है,
अमरत्व गरल से दे सकती,
मेरी मति सब सुध-बुध भूली
तेरे छलनामय लक्षण में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(१४)

विपरीत क्रियाएँ मेरी भी
अब होती हैं तेरे आगे,
पग तेरे पास चले आए
जब वे तेरे भय से भागे,

मायाविनि, क्या कर देती ह
सीधा उलटा हो जाता है,

जब मुक्ति चाहता था अपनी
तुझसे मैंने बंधन माँगे,

अब शांति दुसह-सी लगती है,
अब मन अशांति में रमता है,
अब जलन सुहाती है उर को,
अब सुख मिलता उत्पीड़न में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(१५)

तूने आँखों में आँख डाल
है बाँध लिया मेरे मन को,
मैं तुझे कीलने चला मगर
कीला तूने मेरे तन को,

तेरी परछाईं-सा वन में
तेरे सँग हिलता-डुलता हूँ,

मैं नही समझता अलग-अलग
अब तेरे-अपने जीवन को,

मैं तन-मन का दुर्बल प्राणी
ज्ञानी, ध्यानी भी बड़े-बड़े
हो दास चुके तेरे, मुझको
क्या लज्जा आत्म समर्पण में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(१६)

तुझपर न सका चल कोई भी
मेरा प्रयोग मारण-मोहन,
तेरा न फिरा मन और कहीं,
फेंका भी मैंने उच्चाटन,

सब मंत्र, तंत्र, अभिचारों पर
तू हुई विजयिनी निष्प्रयत्न,

उलटा तेरे वश में आया
मेरा परिचालित वशीकरण;

कर यत्न थका, तू सध न सकी
मेरे गीतों से, गायन से,
कर यत्न थका, तू बँध न सकी
मेरे छंदों के बंधन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(१७)

सब साम-दाम औ' दंड-भेद
तेरे आगे बेकार हुआ,
जप, तप, व्रत, संयम, साधन का
असफल सारा व्यापार हुआ,

तू दूर न मुझसे भाग सकी,
मैं दूर न तुझसे भाग सका,

अनिवारिणि, करने को अंतिम
निश्चय, ले, मैं तैयार हुआ—

अब शांति, अशांति, मरण, जीवन
या इनसे भी कुछ भिन्न अगर,
सब तेरे विषमय चुंबन में,
सब तेरे मधुमय दंशन में !

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

७–मयूरी

(१)

मयूरी,
नाच, मगन - मन नाच !
गगन में सावन घन छाए,
न क्यों सुधि साजन की आए;
मयूरी, आँगन-आँगन नाच !
मयूरी,
नाच, मगन - मन नाच !

(२)

धरणि पर छाई हरियाली,
सजी कलि-कुसुमों से डाली;
मयूरी, मधुवन, मधुवन नाच !
मयूरी,
नाच, मगन - मन नाच !

(३)

समीरण सौरभ सरसाता,
घुमड़ घन मधुकण बरसाता;
मयूरी, नाच मदिर-मन नाच !
मयूरी,
नाच, मगन - मन नाच !

(४)

निछावर इंद्रधनुष तुझपर,
निछावर, प्रकृति, पुरुष तुझपर,
मयूरी, उन्मन-उन्मन नाच !
मयूरी, छूम-छनाछन नाच !
मयूरी, नाच मगन-मन नाच !

दूसरा खंड—

१–अभावों की रागिनी

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है !

(१)

हास लहरों का सतह को
छोड़ तह में सो गया है,
गान विहगों का उतर तरु-
पल्लवों में खो गया है,

छिप गई है जा क्षितिज पर
वायु चिर चंचल दिवस की,

बंद घर-घर में शहर का
शोर सारा हो गया है,

पहुँच नीड़ों में गए
पिछड़े हुए दिग्भ्रांत खग भी,
किंतु ध्वनि किसकी गगन में
अब तलक मँडला रही है;

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

(२)

चीर किसके कंठ को यह
उठ रही आवाज़ ऊपर,
दर न दीवारें जिसे हैं
रोक सकतीं, छत न छप्पर,

जो बिलमती है नहीं नभ-
चुंबिनी अट्टालिका में,

हैं लुभा सकते न जिसको
व्योम के गुंबद मनोहर,

जो अटकती है नहीं
आकाश-भेदी धरहरों में,
लौट बस जिसकी प्रतिध्वनि
तारकों से आ रही है;

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

(३)

बोल, ऐ आवाज़, तू किस
ओर जाना चाहती है,
दर्द तू अपना बता
किसको जताना चाहती है,

कौन तेरा खो गया है
इस अँधेरी यामिनी में,

तू जिसे फिर से निकट
अपने बुलाना चाहती है,

खोजती फिरती किसे तू
इस तरह पागल, विकल हो,
चाह किसकी है तुझे जो
इस तरह तड़पा रही है;

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

(४)

बोल क्या तू थक गई है
विश्व को विनती सुनाते,
बोल क्या तू थक गई है
विश्व से आशा लगाते,

क्या सही अपनी उपेक्षा
अब नहीं जाती जगत से,

बोल क्या ऊबी परीक्षा
धैर्य की अपनी कराते,

जो कि खो विश्वास पूरा
विश्व की संवेदना में,
स्वर्ग को अपनी व्यथाएँ
आज तू बतला रही है;

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

(५)

अनसुनी आवाज़ जो
संसार में होती रही है,
स्वर्ग में भी साख अपना
वह सदा खोती रही है,

स्वर्ग तो कुछ भी नहीं है
छोड़कर छाया जगत की,

स्वर्ग सपने देखती दुनिया
सदा सोती रही है,

पर किसी असहाय मन के
बीच बाकी एक आशा
एक बाकी आसरे का
गीत गाती जा रही है;

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

(६)

पर अभावों की अरी ओ
रागिनी, तू कब अकेली,
तान मेरे भी हृदय की,
ले, बनी तेरी सहेली,

हो रहे, होंगे ध्वनित
कितने हृदय यों साथ तेरे,

तू बुझाती, बूझती जाती
युगों से यह पहेली—

"एक ऐसा गीत गाया
जो सदा जाता अकेले,
एक ऐसा गीत जिसको
सृष्टि सारी गा रही है;"

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

२–अँधेरे का दीपक

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

अँधेरे का दीपक

(१)

कल्पना के हाथ से कम-
नीय जो मंदिर बना था,
भावना के हाथ ने जिसमें
वितानों को तना था,

स्वप्न ने अपने करों से
था जिसे रुचि से सँवारा,

स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों
से, रसों से जो सना था,

ढह गया वह तो जुटाकर
ईंट, पत्थर, कंकड़ों को
एक अपनी शांति की
कुटिया बनाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

(२)

बादलों के अश्रु से धोया
गया नभ-नील नीलम
का बनाया था गया मधु-
पात्र मनमोहक, मनोरम,

प्रथम ऊषा की किरण की
लालिमा-सी लाल मदिरा

थी उसी में चमचमाती
नव घनों में चंचला सम,

वह अगर टूटा मिलाकर
हाथ की दोनों हथेली,
एक निर्मल स्रोत से
तृष्णा बुझाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

(३)

क्या घड़ी थी एक भी
चिंता नहीं थी पास आई,
कालिमा तो दूर, छाया
भी पलक पर थी न छाई,

आँख से मस्ती झपकती,
बात से मस्ती टपकती,

थी हँसी ऐसी जिसे सुन
बादलों ने शर्म खाई,

वह गई तो ले गई
उल्लास के आधार, माना,
पर अथिरता पर समय की
मुसकराना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

(४)

हाय, वे उन्मादं के झोंके
कि जिनमें राग जागा,
वैभवों से फेर आँखें
गान का वरदान माँगा,

एक अंतर से ध्वनित हों
दूसरे में जो निरंतर,

भर दिया अंबर-अवनि को
मत्तता के गीत गा-गा,

अंत उनका हो गया तो
मन बहलने के लिए ही,
ले अधूरी पंक्ति कोई
गुनगुनाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

(५)

हाय, वे साथी कि चुंबक-
लौह-से जो पास आए,
पास क्या आए, हृदय के
बीच ही गोया समाए,

दिन कटे ऐसे कि कोई
तार वीणा के मिलाकर

एक मीठा और प्यारा
ज़िंदगी का गीत गाए,

वे गए तो सोचकर यह
लौटनेवाले नहीं वे,
खोज मन का मीत कोई
लौ लगाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

(६)

क्या हवाएँ थीं कि उजड़ा
प्यार का वह आशियाना,
कुछ न आया काम तेरा
शोर करना, गुल मचाना,

नाश की उन शक्तियों के
साथ चलता ज़ोर किसका,

किंतु ऐ निर्माण के
प्रतिनिधि, तुझे होगा बताना,

जो बसे हैं वे उजड़ते
हैं प्रकृति के जड़ नियम से,
पर किसी उजड़े हुए को
फिर बसाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

३-यात्रा और यात्री

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर !

(१)

चल रहा है तारकों का
दल गगन में गीत गाता,
चल रहा आकाश भी है
शून्य में भ्रमता - भ्रमाता,

पाँव के नीचे पड़ी
अचला नहीं, यह चंचला है,

एक कण भी, एक क्षण भी
एक थल पर टिक न पाता,

शक्तियाँ गति की तुझे
सब ओर से घेरे हुए हैं;
स्थान से अपने तुझे
टलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर ।

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर !

(२)

थे जहाँ पर गर्त पैरों
को जमाना ही पड़ा था,
पत्थरों से पाँव के
छाले छिलाना ही पड़ा था,

घास मख़मल-सी जहाँ थी
मन गया था लोट सहसा,

थी घनी छाया जहाँ पर
तन जुड़ाना ही पड़ा था,

पग परीक्षा, पग प्रलोभन
ज़ोर-कमज़ोरी भरा तू,
इस तरफ़ डटना उधर
ढलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर;

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर !

(३)

शूल कुछ ऐसे, पगों में
चेतना की स्फूर्ति भरते,
तेज़ चलने को विवश
करते हमेशा जबकि गड़ते,

शुक्रिया उनका कि वे
पथ को रहे प्रेरक बनाए,

किंतु कुछ ऐसे कि रुकने
के लिए मजबूर करते,

और जो उत्साह का
देते कलेजा चीर, ऐसे
कंटकों का दल तुझे
दलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर;

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर !

(४)

सूर्य ने हँसना भुलाया,
चंद्रमा ने मुसकराना,
और भूली यामिनी भी
तारिकाओं को जगाना,

एक झोंके ने बुझाया
हाथ का भी दीप लेकिन

मत बना इसको पथिक तू
बैठ जाने का बहाना,

एक कोने में हृदय के
आग तेरे जग रही है,
देखने को मग तुझे
जलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर;

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर !

(५)

वह कठिन पथ और कब
उसकी मुसीबत भूलती है,
साँस उसकी याद करके
भी अभी तक फूलती है,

यह मनुज की वीरता है
या कि उसकी बेहयाई,

साथ ही आशा सुखों का
स्वप्न लेकर झूलती है;

सत्य सुधियाँ, झूठ शायद
स्वप्न, पर चलना अगर है,
झूठ से सच को तुझे
छलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर;

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही, मुसाफ़िर !

४–पथ की पहचान

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले।

(१)

पुस्तकों में है नहीं
छापी गई इसकी कहानी,
हाल इसका ज्ञात होता
है न औरों की ज़बानी,

अनगिनत राही गए इस
राह से, उनका पता क्या,

पर गए कुछ लोग इसपर
छोड़ पैरों की निशानी,

यह निशानी मूक होकर
भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ, पंथी,
पंथ का अनुमान करले;

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले।

(२)

यह बुरा है या कि अच्छा,
व्यर्थ दिन इसपर बिताना,
जब असंभव छोड़ यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना,

तू इसे अच्छा समझ,
यात्रा सरल इससे बनेगी,

सोच मत केवल तुझे ही
यह पड़ा मन में बिठाना,

हर सफल पंथी यही
विश्वास ले इसपर बढ़ा है,
तू इसी पर आज अपने
चित्त का अवधान करले।

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले।

(३)

है अनिश्चित किस जगह पर
सरित, गिरि, गह्वर मिलेंगे,
है अनिश्चित किस जगह पर
बाग़, बन सुंदर मिलेंगे,

किस जगह यात्रा खतम हो
जायगी, यह भी अनिश्चित,

है अनिश्चित, कब सुमन, कब
कंटकों के शर मिलेंगे,

कौन सहसा छूट जाएँगे
मिलेंगे कौन सहसा;
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा
तू न, ऐसी आन करले;

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले।

(४)

कौन कहता है कि स्वप्नों
को न आने दे हृदय में,
देखते सब हैं इन्हें
अपनी उमर, अपने समय में,

और तू कर यत्न भी तो
मिल नहीं सकती सफलता,

ये उदय होते लिए कुछ
ध्येय नयनों के निलय में,

किंतु जग के पंथ पर यदि
स्वप्न दो तो सत्य दो सौ,
स्वप्न पर ही मुग्ध मत हो,
सत्य का भी ज्ञान करले;

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले।

(५)

स्वप्न आता स्वर्ग का, दृग-
कोरकों में दीप्ति आती,
पंख लग जाते पगों को,
ललकती उन्मुक्त छाती,

रास्ते का एक काँटा
पाँव का दिल चीर देता,

रक्त की दो बूँद गिरतीं,
एक दुनिया डूब जाती,

'आँख में हो स्वर्ग लेकिन
पाँव पृथ्वी पर टिके हों',
कंटकों की इस अनोखी
सीख का सम्मान करले।

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले।

५–नंदन और बगिया

सोच न कर सूखे नंदन का,
देता जा बगिया में पानी।

(१)

कहाँ गया वह मधुवन जिसकी
आभा-शोभा नित्य नई थी,
जिसके आँगन में वासंती
आकर जाना भूल गई थी,

जिसमें खिलती थी इच्छा की
कलियाँ, अभिलाषा फलती थी,

साँसों में भरती मादकता
वायु जहाँ की मोदमयी थी,

यह सूखा तो आँसू से क्या
हृदय-रक्त से हरा न होगा,
सूख-सूख फिर-फिर लहराता
वसुधा का ही अंचल धानी।

सोच न कर सूखे नंदन का,
देता जा बगिया में पानी।

(२)

दिग्‌दिगंत में गुंजित होने-
वाला स्वर पड़ मंद गया क्यों,
जुड़ा हुआ शब्दों - भावों से
खंड - खंड हो छंद गया क्यों,

गाती थी नंदन की परियाँ,
राग मिला तू भी गाता था,

बंद हुए यदि उनके गायन,
गाना तेरा बंद हुआ क्यों,

प्रेरित होनेवाले मन की
प्रेरक शक्ति अकेली कब थी,
मूक पड़े गंधर्वों क सुर,
कूक रही कोयल मस्तानी;

सोच न कर सूखे नंदन का,
देता जा बगिया में पानी।

(३)

उस मधुवन का स्वप्न भला क्या
जहाँ नहीं पतझड़ आता है,
जहाँ सुमन अपने जोबन पर
आकर नहीं बिखर पाता है,

जहाँ ढलकते नहीं कली की
आँखों से मोती के आँसू,

जहाँ नहीं कोकिल का व्याकुल
क्रंदन गायन बन जाता है,

मर्त्य अमर्त्यों के सपने से
धोका देता है अपने को,
अमरों के अमरण जीवन से
मादक मेरी क्षणिक जवानी;

सोच न कर सूखे नंदन का,
देता जा बगिया में पानी।

(४)

धन्यवाद दे, नंदन के मिटने
से तूने धरती देखी,
जड़ दुनिया के बदले तूने
दुनिया जीती - मरती देखी,

वह मन की मूरत थी उसमें
प्राण कहाँ थे, ओ दीवाने,

यह दुनिया तूने साँसों पर
दबती और उभरती देखी,

स्वप्न हृदय मथकर मिलते हैं,
मूल्य बड़ा उनका, तिसपर भी,
एक सत्य के ऊपर होती
सौ - सौ सपनों की क़ुर्बानी;

सोच न कर सूखे नंदन का,
देता जा बगिया में पानी।

६–जो बीत गई

(१)

जो बीत गई सो बात गई !

जीवन में एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया;
अंबर के आनन को देखो,

कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे,
जो छूट गए फिर कहाँ मिले;
पर बोलो टूटे तारों पर
कब अंबर शोक मनाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(२)

जीवन में वह था एक कुसुम,
थे उसपर नित्य निछावर तुम,
वह सूख गया तो सूख गया;
मधुवन की छाती को देखो,
सूखी कितनी इसकी कलियाँ,
मुर्झाईं कितनी वल्लरियाँ,
जो मुर्झाईं फिर कहाँ खिलीं;
पर बोलो सूखे फूलों पर
कब मधुवन शोर मचाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(३)

जीवन में मधु का प्याला था,
तुमने तन-मन दे डाला था,
वह टूट गया तो टूट गया;
मदिरालय का आँगन देखो,
कितने प्याले हिल जाते हैं,
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं,

जो गिरते हैं कब उठते हैं;
पर बोलो टूटे प्यालों पर
कब मदिरालय पछताता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(४)

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए,
मधुघट फूटा ही करते हैं,
लघु जीवन लेकर आए हैं,
प्याले टूटा ही करते हैं,
फिर भी मदिरालय के अंदर
मधु के घट हैं, मधुप्याले हैं,
जो मादकता के मारे हैं,
वे मधु लूटा ही करते हैं;
वह कच्चा पीनेवाला है
जिसकी ममता घट-प्यालों पर,
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

७—कामना

(१)

संक्रामक शिशिर समीरण छू
जब मधुवन पीला पड़ जाता,
जब कुसुम-कुसुम, जब कली-कली
गिर जाती, पत्ता झड़ जाता,
तब पतझड़ का उजड़ा आँगन
करुणा-ममतामय स्वर वाली
जो कोकिल मुखरित रखती है
तेरे मन को भी बहलाए!

(२)

जब ताप भरा, जब दाप भरा
दुख-दीर्घ दिवस ढल चुकता है,
जब अंग-अंग, जब रोम-रोम
बसुधातल का जल चुकता है,
तब शीतल, कोमल, स्नेह भरी
जो शशि किरणें चुपके-चुपके
पृथ्वी की छाती सहलातीं,
तेरे छाले भी सहलाएँ !

(३)

जब प्यास-प्यास कर धरती का
पौधा - पौधा मुर्झाता है,
जब बूँद-बूँद को तरस-तरस
तिनका-तिनका मर जाता है,
तब नव जलधर की जो बूँदें
बरसातीं भू पर हरियाली,
तेरे मानस के अंदर भी
आशा के अंकुर उकसाएँ !

(४)

प्रलयांधकार से घिर-घिरकर
युग-युग निश्चल सोने पर भी,
युग-युग चेतनता के सारे
लक्षण-लक्षण खोने पर भी

जो सहसा पड़ती जाग राग,
रस, रंगों की प्रतिमा बनकर,
वह तुझे मृत्यु की गोदी में
जीवन के सपने दिखलाए !

तीसरा खंड—

१–प्रतिकूल

(१)

बहती है वासंती बयार,
पर एक पेड़ शाखावशेष
कर सांध्य गगन को पृष्टभूमि
है खड़ा हुआ अविचल, उदास,
कोकिल के स्वर से उदासीन;

है सोच रहा मन में मानो
उन मरकत पत्रों की बातें,
जो ऋतु-ऋतु मर्मर ध्वनि करते
उसकी डाली-डाली भूले,
उन कलियों की, उन कुसुमों की,
जो उसकी गोदी में फूले,
जो पड़ पीले, सूखे ढीले
गिर गए, झड़े औ' फिर न उठे !

जब उसे उचित, हो परिस्फुटित
शत-शत अंकुर में मृदुल-मृदुल !

(२)

पड़ती है पावस की फुहार,

पर वसुंधरा का एक भाग
है लुटा हुआ जिसका सुहाग,
खल्वाटों-सा जिसका ललाट,
है पड़ा चटानों-सा अचेत;

है सोच रहा मन में मानो
उन कोमल-कोमल हरे-हरे
लघु-लघु तृण-पौधों की बातें,
जिनकी मखमल-सी शैया पर
मलयानिल करवट लेता था,
आशीष-दुआएँ देता था,
जो ग्रीष्मातप में जल-जलकर
ऐसे सूखे फिर उग न सके!

जब उसे उचित, हो नव सज्जित
हरियाली से मंजुल-मंजुल!

(३)

आती है जीवन की पुकार,

पर मानवता का एक सजग
प्रतिनिधि सुधियों के खंडहर में
है बैठा चिंता में निमग्न
कर अपने दोनों कान बंद;

है सोच रहा मन में मानो
उन मादक स्वप्नों की बातें,
जिनमें इच्छाएँ मूर्तिमान
हो सहसा अंतर्धान हुई,
उन मधुर सुरतों की बातें,
जो मन-मंदिर में विहँस-खेल
औ' पल भर चहल-पहल करके
हो लुप्त गई औ' फिर न मिली !

जब उसे उचित, हो प्रतिध्वनित
उसके प्रति स्वर पर पुलकाकुल !

२–सम्मानित

(१)

पथ में भरी गई कठिनाई,
मंज़िल तेरे पास न आई,
(नहीं शत्रुता थी यह तुझसे)
क्योंकि चला था तू ले करके
कभी नहीं रुकने की आन

(२)

रवि ने तुझको पथ न दिखाया,
झंझा ने कर-दीप बुझाया,
(नहीं उपेक्षा थी यह तेरी)
क्योंकि जगत में एक तुझे था
अपनी ज्वाला का अभिमान !

(३)

ऊँचा तूने हाथ उठाया,
लेकिन अपना लक्ष्य न पाया,
(यह तेरा उपहास नहीं था)
क्योंकि तुझे थी केवल अपने
मनुजोचित क़द की पहचान !

(४)

अमर वेदनाओं से अंतर
मथा गया तेरा निशि-वासर,
(यह तुझपर अन्याय नहीं था)
क्योंकि यही था सबसे बढ़कर
तेरी छाती का सम्मान !

*

३—अजेय

(१)

अजेय तू अभी बना !
न मंज़िलें मिलीं कभी,
न मुश्किलें हिलीं कभी,
मगर क़दम थमे नहीं,
क़रार-क़ौल जो ठना।
अजेय तू अभी बना !

(२)

सफल न एक चाह भी,
सुनी न एक आह भी,
मगर नयन भुला सके
कभी न स्वप्न देखना।
अजेय तू अभी बना!

(३)

अतीत याद है तुझे,
कठिन विषाद है तुझे,
मगर भविष्य से रुका
न अँखमुदौल खेलना।
अजेय तू अभी बना!

(४)

सुरा समाप्त हो चुकी,
सुपात्र-माल खो चुकी,
मगर मिटी, हटी, दबी
कभी न प्यास-वासना।
अजेय तू अभी बना!

(५)

पहाड़ टूटकर गिरा,
प्रलय पयोद भी घिरा,
मनुष्य है कि देव है
कि मेरुदंड है तना !
अजेय तू अभी बना !

४—अधिकारी

(१)

तू तिमिर में धँस चुका है,
तू तिमिर में बस चुका है,
इसलिए तेरे नयन को
ज्योति का जादू समझने
का मिला अधिकार।

(२)

तू उपेक्षा सह चुका है,
तू घृणा में दह चुका है,
इसलिए तेरा हृदय ही
जान सकता है कभी
वरदान क्या है प्यार।

(३)

प्रतिध्वनित करता रहा है
शून्य जो तूने कहा है,
इसलिए तुझको प्रणय की
एक दिन देगी सुनाई
दुर्निवार पुकार।

(४)

कपट के कटु पाश में फँस
तू लुटा था, इसलिए बस
तू बताएगा कि कैसे
स्नेह-बंधन खोलते हैं
मुक्ति का नव द्वार।

५–प्रत्याशा

(१)

किया गया मधुवन को विह्वल,
टूटा तरुओं का दल, प्रतिदल,

फाड़ा गया कुसुम का दामन,
चीरा गया कली का अंचल,

क्योंकि कोकिला की वाणी में
थी वह शक्ति कि जिसके द्वारा

मृत मधुवन को दे सकती थी
फिर से वह जीवन का दान।

(२)

मिला सूर्य को देश-निकाला,
हरा गया जग का उजियाला,
बहुरंगी दुनिया के ऊपर
फैला तम का परदा काला;
क्योंकि उषा के नवल हास में
थी वह शक्ति कि जिसके द्वारा
तिमिरावृत जग पर वह फिर से
ला सकती थी स्वर्ण विहान।

(३)

दुनिया गई जलाई तेरी,
दुनिया गई मिटाई तेरी,
सोने का संसार जहाँ था,
वहाँ लगी मिट्टी की ढेरी,
क्योंकि हृदय के अंदर तेरे
थी वह शक्ति कि जिसके द्वारा
महानाश की छाती पर तू
कर सकता था नव निर्माण !

६-चेतावनी

(१)

मानी, देख न कर नादानी।
मातम का तम छाया, माना,
अंतिम सत्य इसे यदि जाना,
तो तूने जीवन की अब तक आधी सुनी कहानी।
मानी, देख न कर नादानी।

(२)

सुन यदि तूने आशा छोड़ी,
तो अपनी परिभाषा छोड़ी,
तुझे मिली थी यह अमरों की केवल एक निशानी।
मानी, देख न कर नादानी।

(३)

ध्वंसों में यदि सिर न उठाया,
सर्जन का यदि गीत न गाया,
स्वर्ग लोक की आशाओं पर फिर जाएगा पानी।
मानी, देख न कर नादानी।

७–निर्माण

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !

(१)

वह उठी आँधी कि नभ में
छा गया सहसा अँधेरा,
धूलि धूसर बादलों ने
भूमि को इस भाँति घेरा,

रात-सा दिन हो गया, फिर
रात आई और काली,

लग रहा था अब न होगा
इस निशा का फिर सबेरा,

रात के उत्पात-भय से
भीत जन-जन, भीत कण-कण,
किंतु प्राची से उषा की
मोहिनी मुसकान फिर-फिर !

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !

निर्माण

(२)

वह चले झोंके कि काँपे
भीम कायावान भूधर,
जड़ समेत उखड़-पुखड़कर
गिर पड़े, टूटे विटप वर,

हाय, तिनकों से विनिर्मित
घोंसलों पर क्या न बीती,

डगमगाए जबकि कंकड़,
ईंट, पत्थर के महल-घर;

बोल आशा के विहंगम,
किस जगह पर तू छिपा था,
जो गगन पर चढ़ उठाता
गर्व से निज तान फिर-फिर !

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !

(३)

क्रुद्ध नभ के वज्र दंतों
में उषा है मुसकराती,
घोर गर्जनमय गगन के
कंठ में खग पंक्ति गाती;

एक चिड़िया चोंच में तिनका
लिए जो जा रही है,

वह सहज में ही पवन
उंचास को नीचा दिखाती !

नाश के दुख से कभी
दबता नहीं निर्माण का सुख,
प्रलय की निस्तब्धता से
सृष्टि का नव गान फिर-फिर !

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !

चौथा खंड—

१–दो नयन

(१)

दो नयन जिनसे कि फिर मैं
विश्व का शृंगार देखूँ।

स्वप्न की जलती हुई नगरी
धुवाँ जिनमें गई भर,
ज्योति जिनकी जा चुकी है
आँसुओं के साथ झर-झर,

मैं उन्हीं से किस तरह फिर
ज्योति का संसार देखूँ,
दो नयन जिनसे कि फिर मैं
विश्व का शृंगार देखूँ।

(२)

देखते युग-युग रहे जो
विश्व का वह रूप अपलक,
जो उपेक्षा, छल, घृणा में
मग्न था नख से शिखा तक,

मैं उन्हीं से किस तरह फिर
प्यार का संसार देखूँ,
दो नयन जिनसे कि फिर मैं
विश्व का शृंगार देखूँ।

(३)

संकुचित दृग की परिधि थी
बात यह मैं मान लूँगा,
विश्व का इससे जुदा जब
रूप भी मैं जान लूँगा,

दो नयन जिनसे कि मैं
संसार का विस्तार देखूँ;
दो नयन जिनसे कि फिर मैं
विश्व का शृंगार देखूँ।

२–जादू

(१)

कौन जादू डालता है
आज फिर मेरे नयन में ?

जो कुदिन पर थम गया था
चक्र फिरने का, समय का,
अस्त दुर्दिन में हुआ जो
भाग्य के नूतन उदय का,

कौन करता है इशारा
एक आशा की किरण में ?
कौन जादू डालता है
आज फिर मेरे नयन में ?

(२)

प्यार के संसार से चिर-
काल निर्वासित रहा जो,
जो अपरिचित सब जगह
अपमान, अवहेला सहा जो,

ले रहा है कौन उसको
आज फिर अपनी शरण में ?
कौन जादू डालता है
आज फिर मेरे नयन में ?

(३)

मैं नहीं ज्योतिर्विदों,
सामुद्रिकों के पास जाता,
क्योंकि मेरा कंठ ही
भवितव्यता मेरी बताता;

भर रहा है कौन भूला
राग फिर मेरे वचन में ?
कौन जादू डालता है
आज फिर मेरे नयन में ?

३-तूफ़ान

(१)

कौन यह तूफ़ान रोके !

हिल उठे जिससे समुंदर,
हिल उठे दिशि और अंबर,

हिल उठे जिससे धरा के
वन सघन कर शब्द हर-हर,
उस बवंडर के झकोरे

किस तरह इंसान रोके !
कौन यह तूफ़ान रोके !

(२)

उठ गया, लो, पाँव मेरा,
छुट गया, लो, ठाँव मेरा,

अलविदा, ऐ साथवालो,
और मेरा पंथ - डेरा;
तुम न चाहो, मैं न चाहूँ,

कौन भाग्य-विधान रोके !
कौन यह तूफ़ान रोके !

(३)

आज मेरा दिल बढ़ा है,
आज मेरा दिल चढ़ा है,

हो गया बेकार सारा
जो लिखा है, जो पढ़ा है;
रुक नहीं सकते हृदय के

आज तो अरमान रोके !
कौन यह तूफ़ान रोके !

(४)

आज करते हैं इशारे
उच्चतम नभ के सितारे,
निम्नतम घाटी डराती
आज अपना मुँह पसारे;

एक पल नीचे नज़र है,
एक पल ऊपर नज़र है;
कौन मेरे अश्रु थामे,
कौन मेरे गान रोके !
कौन यह तूफ़ान रोके !

४–मृगतृष्णा

(१)

अँखमिचौनी आज फिर तुम
खेलने आईं, सलोनी।

खोलकर पलकें दृगों में
रूप की मदिरा भरोगी,
पुतलियों में पैठ तैरोगी,
नयन मंथन करोगी,

आज फिर मुझको पड़ेगी
शांत मन की शांति खोनी।
अँखमिचौनी आज फिर तुम
खेलने आईं, सलोनी।

(२)

तुम करोगी आज मेरे
प्राण की पूरी समीक्षा,
तुम करोगी आज मेरे
धैर्य की पूरी परीक्षा,

आज फिर मुझको पड़ेगी
शक्तियाँ बिखरी सँजोनी।
अँखमिचौनी आज फिर तुम
खेलने आईं, सलोनी।

(३)

जानता मैं हूँ कि मृगभ्रम
तुम, नहीं हो धार जल की,
पर मुझे है लाज रखनी
आज अंतर के अनल की,

चाहिए जिसमें सलिल के
नाम पर भी हौंस होनी;
अँखमिचौनी आज फिर तुम
खेलने आईं, सलोनी।

५–प्यार और संघर्ष

(१)

प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ !

अँखमिचौनी खेलती हो ख़ूब खेलो,
खोज लूंगा, तुम कहीं भी आड़ ले लो,

खेल कब होगा ख़तम, यह तो बताओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ !

(२)

खेल कल का हो गया संग्राम, देखो,
कुछ नहीं खोया, अगर परिणाम देखो,

जीत जाओगी अगर तुम हार जाओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ !

(३)

प्रीति पुर में हैं हुए बंदी विजित कब,
बंधनों में बाँध लो, कर लो विजय तब,

यह न मानो, एक मानी को गँवाओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ !

(४)

प्रेरणा पर्याप्त थी मुझको हृदय की,
तुम समझती हो नहीं भाषा प्रणय की,

यह समय का व्यंग था—तुम दूर जाओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ !

(५)

जिस तरह शिशिरांत में कंकाल तरु पर
फैलती पत्रावली सहसा विहँसकर,
वृक्ष-जीवन में अगर तुम इस तरह से
आ नहीं सकतीं सहज ही तो न आओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ !

६–तुम नहीं हो

(१)

शब्द में ढल भाव मेरे
लेखनी पर जब उतरते,
तब विवश जिसके गले में
गीत बन-बनकर विचरते,

तुम नहीं हो
हाय, कोई दूसरा है।

(२)

चिर विधुर मेरे हृदय में
जब मिलन-मनुहार उठती,
तब चपल जिसके पगों की
पायलें झनकार उठतीं,

तुम नहीं हो
हाय, कोई दूसरा है।

(३)

तीव्र जीवन की तृषा से
जबकि मेरा कंठ जलता,
तब अकारण ही पुलक मन-
प्राण ही जिसका पिघलता,

तुम नहीं हो
हाय, कोई दूसरा है।

७–नई झनकार

(१)

छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

मौन तम के पार से यह कौन
तेरे पास आया,
मौत में सोए हुए संसार
को किसने जगाया,

कर गया है कौन फिर भिनसार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

(२)

रश्मियों में रँग पहन ली आज
किसने लाल सारी,
फूल-कलियों से प्रकृति ने माँग
है किसकी सँवारी,
कर रहा है कौन फिर शृंगार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

(३)

लोक के भय ने भले ही रात
का हो भय मिटाया,
किस लगन ने रात-दिन का भेद
ही मन से हटाया,
कौन करता है खुले अभिसार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

(४)

तू जिसे लेने चला था भूल-
कर अस्तित्व अपना,
तू जिसे लेने चला था बेच-
कर अपनत्व अपना,
दे गया है कौन वह उपहार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

(५)

जो करुण विनती, मधुर मनुहार
से न कभी पिघलते,
टूटते कर, फूट जाते शीश
तिल भर भी न हिलते,
खुल कभी जाते स्वयं वे द्वार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

(६)

भूल तू जा अब पुराना गीत
औ' गाथा पुरानी,
भूल तू जा अब दुखों का राग
दुर्दिन की कहानी,

ले नया जीवन, नई झनकार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

पाँचवाँ खंड—

१—मुझे पुकार लो

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो !

(१)

ज़मीन है न बोलती
न आसमान बोलता,
जहान देखकर मुझे
नहीं ज़बान खोलता,

नहीं जगह कहीं जहाँ
न अजनबी गिना गया,

कहाँ-कहाँ न फिर चुका
दिमाग़-दिल टटोलता,

कहाँ मनुष्य है कि जो
उमीद छोड़कर जिया,
इसीलिए अड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो;

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो !

(२)

तिमिर - समुद्र कर सकी
न पार नेत्र की तरी,
विनष्ट स्वप्न से लदी,
विषाद याद से भरी,

न कूल भूमि का मिला,
न कोर भोर की मिली,

न कट सकी, न घट सकी
विरह - घिरी विभावरी,

कहाँ मनुष्य है जिसे
कमी खली न प्यार की,
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे दुलार लो !

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो !

(३)

उजाड़ से लगा चुका
उमीद मैं बहार की,
निदाघ से उमीद की
बसंत के बयार की,

मरुस्थली मरीचिका
सुधामयी मुझे लगी,

अँगार से लगा चुका
उमीद मैं तुषार की,

कहाँ मनुष्य है जिसे
न भूल शूल-सी गड़ी,
इसीलिए खड़ा रहा
कि भूल तुम सुधार लो !

इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो !
पुकार कर दुलार लो, दुलार कर सुधार लो !

२–कौन तुम हो ?

(१)

ले प्रलय की नींद सोया
जिन दृगों में था अँधेरा,
आज उनमें ज्योति बनकर
ला रही हो तुम सबेरा,

सृष्टि की पहली उषा की
यदि नहीं मुसकान तुम हो,
कौन तुम हो ?

(२)

आज परिचय की मधुर
मुसकान दुनिया दे रही है,
आज सौ-सौ बात के
संकेत मुझसे ले रही है,

विश्व से मेरी अकेली
यदि नहीं पहचान तुम हो,
कौन तुम हो ?

(३)

हाय किसकी थी कि मिट्टी
में मिला संसार मेरा,
हास किसका है कि फूलों-
सा खिला संसार मेरा,

नाश को देती चुनौती
यदि नहीं निर्माण तुम हो,
कौन तुम हो ?

(४)

मैं पुरानी यादगारों
से विदा भी ले न पाया
था कि तुमने ला नए ही
लोक में मुझको बसाया,

जो नहीं उठकर ठहरता
यदि नहीं तूफ़ान तुम हो,
कौन तुम हो ?

(५)

तुम किसी बुझती चिता की
जो लुकाठी खींच लाती
हो, उसी से ब्याह-मंडप
के तले दीपक जलातीं,

मृत्यु पर फिर-फिर विजय की
यदि नहीं दृढ़ आन तुम हो,
कौन तुम हो ?

(६)

यह इशारे हैं कि जिनपर
काल ने भी चाल छोड़ी,
लौट मैं आया अगर तो
कौन-सी सौगंध तोड़ी,

सुन जिसे रुकना असंभव
यदि नहीं आह्वान तुम हो,
कौन तुम हो ?

(७)

कर परिश्रम कौन तुमको
आज तक अपना सका है,
खोजकर कोई तुम्हारा
कब पता भी पा सका है,

देवताओं की अनिश्चित
यदि नहीं वरदान तुम हो,
कौन तुम हो ?

३–वेदना का गीत

(१)

वेदना का गीत गाकर
वेदना तुमने बँटा ली !

आज अपनी वेदना के
जबकि मैंने गीत गाए,
मन - विपंची के तुम्हारे
तार भी तन झनझनाए,

साथ मेरे मंद स्वर में
तान तुमने भी निकाली;
वेदना का गीत गाकर
वेदना तुमने बँटा ली !

(२)

आज मेरी वेदना दृग
में तुम्हारे छलछलाई,
आह की प्रतिध्वनि तुम्हें छू
पास मेरे लौट आई,

आज तो मैंने हृदय की
भावना साकार पा ली;
वेदना का गीत गाकर
वेदना तुमने बँटा ली !

(३)

प्राण-प्राणों से गए मिल
क्या मिले दो कंठ के स्वर,
प्राण-प्राणों में गए घुल
क्या मिले आतुर अधर-कर

दी बना किसने उजाली
आज मेरी रात काली;
वेदना का गीत गाकर
वेदना तुमने बँटा ली !

(४)

जल रहा जिस अग्नि में था
एक युग से मैं निरंतर,
दी बुझा तुमने उसे दो
बूँद आँसू की गिराकर;
एक पल पहले जहाँ थे
साध के दाहक अँगारे,
तुम खड़ी हो उस जगह पर
दीप आशा के सँवारे,

किन ग्रहों ने है मिला दी
आज होली से दिवाली;
वेदना का गीत गाकर
वेदना तुमने बँटा ली !

४–तुम गा दो

(१)

तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए !

मेरे वर्ण - वर्ण विश्रृंखल,
चरण - चरण भरमाए,
गूँज - गूँजकर मिटनेवाले
मैंने गीत बनाए;

कूक हो गई हूक गगन की
कोकिल के कंठों पर,
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए !

(२)

जब-जब जग ने कर फैलाए,
मैंने कोष लुटाया,
रंक हुआ मैं निज निधि खोकर
जगती ने क्या पाया !

भेंट न जिसमें मैं कुछ खोऊँ
पर तुम सब कुछ पाओ,
तुम ले लो, मेरा दान अमर हो जाए !
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए !

(३)

सुंदर और असुंदर जग में
मैंने क्या न सराहा,
इतनी ममतामय दुनिया में
मैं केवल अनचाहा;

देखूँ अब किसकी रुकती है
आ मुझपर अभिलाषा,
तुम रख लो, मेरा मान अमर हो जाए !
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए !

(४)

दुख से जीवन बीता फिर भी
शेष अभी कुछ रहता,
जीवन की अंतिम घड़ियों में
भी तुमसे यह कहता,

सुख की एक साँस पर होता
ह अमरत्व निछावर,
तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाए !
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए !

५–जयमाल

(१)

डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने !

रात आधी खींच लाई
क्यों तुम्हें यों पास मेरे,
क्यों तुम्हें विचलित उठे कर
अश्रु औ' उच्छ्वास मेरे,

स्नेह के, संवेदना के,
मोह के, ममता, व्यथा के
तप्त आँसू से निमज्जित
कर लिए क्यों गाल तुमने ?
डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने !

(२)

धुल गया उन आँसुओं की
धार से दुर्भाग्य मेरा,
इस तरह जैसे कि काले
मेघ से आकाश घेरा

वृष्टि होने से अचानक
खुल गया हो, खिल पड़ा हो,
और नव सौभाग्य से
चमका दिया फिर भाल तुमने।
डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने

(३)

विधि-विधानों को किया था
हारकर स्वीकार मैंने,
कर लिया था ख़ूब अपने
आप को तैयार मैंने—

'अब न चाहूँगा कि बदले
फिर कभी यह भाग्य मेरा;
कर्म-गति, मेरी प्रतिज्ञा
दी पलों में टाल तुमने!

डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने !

(४)

काल था जैसे चलाता
उस तरह से चल रहा था,
अग्नि - पथ - आरूढ़ मेरा
प्राण - तन - मन जल रहा था,

आँसुओं में मुसकराकर,
मुसकराहट में विहँसकर
जलसिंचे पथ पर कुसुम-कलि-
मालिका दी डाल तुमने;
डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने !

(५)

देखता था काल बस दो
बूँद गिरने का इशारा,
कर दिया अमृत गरल को
और बदला दृश्य सारा,

विष - विदग्ध अधर सुधा में
हो गए सहसा विसुध - बुध,
कौन - सा आसव दिया दृग-
कोरकों से ढाल तुमने;
डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने !

(६)

कर रहा था चंद्र शीतल
रश्मियाँ तुमपर निछावर,
खोज करता था तुम्हारी
मत्त मलयानिल निरंतर,

पाँव धोने को तुम्हारे
था तरसता सिंधु का कर,
क्या समझ कर, किंतु वर ली
एक पागल ज्वाल तुमने;
डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल! तुमने!

६--लौटा लाओ

(१)

कब कहता हूँ लौटा लाओ
मेरे जीवन की दीवाली,
जब होड़ चली थी लेने को
दिन से मेरी रजनी काली,

जब जगमग-जगमग करता था
मेरी हर आशा का दीपक,

जब घोर कुहू में भी छाई
थी मेरे चेहरे पर लाली;

कब कहता हूँ लौटा लाओ
मेरे जीवन की दीवाली;

मैं तो बस इतना कहता हूँ–
वह एक दीप लौटा लाओ,

जिसकी लघु वाड़व ज्वाला से
घबरा उठता तम का सागर !

(२)

कब कहता हूँ लौटा लाओ
मेरे जीवन के मधुवन को,
कब कहता हूँ लौटा लाओ
मधुऋतु के विकसे यौवन को,

लौटा लाओ

मधु गंध भार से अलसाए
अलमस्त-चाल मलयानिल को,

मधुरस पीकर उन्मत्त हुए
भौंरे के गुन-गुन गुंजन को;

कब कहता हूँ लौटा लाओ
मेरे जीवन के मधुवन को,

मैं तो बस इतना कहता हूँ–
वह एक कली लौटा लाओ

जिसके सहसा हँस देने पर
लज्जा से गड़ जाता पतझर !

(३)

कब कहता हूँ लौटा लाओ
जीवन में मधु के सागर को,
कब कहता हूँ लौटा लाओ
मधुबालाओं की गागर को,

मधुभरी लबालब, लहराती
आतीं प्यालों की मालाएँ,

जो अधरों को सिंचित करके
शोषित करती थीं अंतर को,

कब कहता हूँ लौटा लाओ
जीवन में मधु के सागर को;

मैं तो बस इतना कहता हूँ–
वह एक बूँद लौटा लाओ,

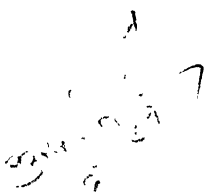

जो सुधामयी बन जाती है
गिरकर अधरों से अधरों पर !

७–अभिसार के पल

(१)

सुमुखि, ये अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

काल-सागर में न क्षण-कण
ये कहीं खो जायँ,
आदि होते ही न इनका
अंत भी हो जाय;

समय दुहराता नहीं यह
स्नेह का उपहार;
सुमुखि, ये अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

(२)

भूल थी मेरी कि वादा
कर लिया था और,
एक युग से और था
मेरा तरीक़ा-तौर,
किंतु युग की भूल का है
एक क्षण प्रतिकार;
सुमुखि, ये अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

(३)

कर सकेंगी मानवों का
जो सदा कल्याण,
विश्व की उन हलचलों को
आयु मेरी दान,
कुछ पलों पर किंतु एकाकी
मुझे अधिकार;
सुमुखि, य अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

(४)

कल सुधारूँगा हुई
संसार में जो भूल,
कल उठाऊँगा भुजा
अन्याय के प्रतिकूल,

आज तो कह दो कि मेरा
बंद शयनागार !
सुमुखि, ये अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

छठा खंड—

१-नया वर्ष

वर्ष नव,
हर्ष नव,
जीवन उत्कर्ष नव।

नव उमंग,
नव तरंग,
जीवन का नव प्रसंग।

नवल चाह,
नवल राह,
जीवन का नव प्रवाह।

गीत नवल,
प्रीति नवल,
जीवन की रीति नवल,
जीवन की नीति नवल,
जीवन की जीत नवल!

२—नव दर्शन

दर्श नवल,
स्पर्श नवल,
जीवन-आकर्ष नवल,
जीवन आदर्श नवल।

वर्ण नवल,
वेश नवल,
जीवन-उन्मेष नवल,
जीवन-संदेश नवल।

प्राण नवल,
हृदय नवल,
जीवन की प्रणति नवल,
जीवन में प्रणय नवल।

३—एक दाह

दाह एक,
आह एक,
जीवन की त्राहि एक।

प्यास एक,
त्रास एक,
जीवन इतिहास एक।

आग एक,
राग एक,
जीवन का भाग एक।

तीर एक,
पीर एक,
नयनों में नीर एक,
जीवन-ज़ंजीर एक।

४–एक स्नेह

एक पलक,
एक झलक,
दो मन में एक ललक।

एक पास,
एक पहर,
दो मन में एक लहर।

एक रात,
एक साथ,
दो मन में एक बात।

एक गेह,
एक देह,
दो मन में एक नेह।

५—नवल प्रात

नवल हास,
नवल बास,
जीवन की नवल साँस।

नवल अंग,
नवल रंग,
जीवन का नवल संग।

नवल साज,
नवल सेज,
जीवन में नवल तेज।

नवल नींद,
नवल प्रात,
जीवन का नव प्रभात,
कमल नवल किरण-स्नात।

६—नूतन सृष्टि

फुल्ल कमल,
गोद नवल,
मोद नवल,
गेह में विनोद नवल।

बाल नवल,
लाल नवल,
दीपक में ज्वाल नवल।

दूध नवल,
पूत नवल,
वंश में विभूति नवल

नवल दृश्य,
नवल दृष्टि,
जीवन का नव भविष्य,
जीवन की नवल सृष्टि।

७–नवीन उत्तरदायित्व

कवि का आचार नवल,
कवि का व्यवहार नवल,
कवि का उद्‌गार नवल।

कवि का आधार नवल,
कवि का अधिकार नवल,
कवि का संसार नवल।

कवि का मंतव्य नवल,
कवि का कर्तव्य नवल,
कवि का भवितव्य नवल।

कवि का व्यक्तित्व नवल,
कवि का अस्तित्व नवल,
उत्तरदायित्व नवल।

सातवाँ खंड—

१–प्रेम

भूल नहीं,
शूल नहीं,
चिता की मूल नहीं।

चाल नहीं,
जाल नहीं,
दुर्दिन की माल नहीं।

पाप नहीं,
शाप नहीं,
सकट - संताप नहीं।

प्रेम अजर, प्रेम अमर
जो कुछ भी सुदरतर
जगती में, जीवन में

लाता है मंथन कर,
मंथन से सिहर - सिहर
उठते हैं नारी - नर !

२—जग

कागद की
नाव नहीं,
बालक - बहलाव नही ।

बंदीघर,
जेल नहीं,
दानवीय खेल नहीं ।

नंदन का
कुंज नहीं,
सुखमा - सुख पुंज नही ।
दुनिया यह स्वर्ग - बेलि,
दुनिया यह स्वर्ग - बीज,
अश्रु - स्वेद - लोहू से
जिसको जब सींच - सींच
मनुज बढ़ा लेता है,
अमृत फल देता है ।

३–जीवन

छाया औ'
स्वप्न नहीं,
भ्रांति - भेद - मग्न नहीं ।

काल की
तरंग नहीं,
एक मृत्यु व्यंग नहीं ।

पागल की
गल्प नहीं,
अर्थ रहित जल्प नहीं ।

मानव के अंतर में
जो कुछ उत्तमतर है,
उसके अभिव्यंजन का
जीवन यह अवसर है,
सुखमय वह केवल जो
इस तप में तत्पर है ।

४–काल

कल्प - कल्पांतर मदांध समान,
काल, तुम चलते रहे अनजान,
आ गया जो भी तुम्हारे पास,
कर दिया तुमने उसे बस नाश।

मिटा क्या-क्या छू तुम्हारा हाथ,
यह किसी को भी नहीं है ज्ञात,
किंतु अब तो मानवों की आँख
सजग प्रतिपल, घड़ी, वासर, पाख,
उल्लिखित प्रति पग तुम्हारी चाल,
उल्लिखित हर एक पल का हाल,
अब नहीं तुम प्रलय के जड़ दास,
अब तुम्हारा नाम है इतिहास!
ध्वंस की अब हो न शक्ति प्रचंड,
सभ्यता के वृद्धि - मापक दंड!
नाश के अब हो न गर्त महान,
प्रगतिमय संसार के सोपान!

काल

तुम नहीं करते कभी कुछ नष्ट
जन्मती जिससे नहीं नव सृष्टि,
किंतु यदि करते कभी बर्बाद
कुछ कि जो सुंदर, सुमधुर, अनूप,
मानवों की चमत्कारी याद
है बनाती एक उसका रूप
और सुंदर और मधुमय, पूत,
जानता है जो भविष्य न भूत,
सब समय रह वर्तमान समान
विश्व का करता सतत कल्याण !

५—कर्तव्य

(१)

देवि, गया है जोड़ा यह जो
मेरा और तुम्हारा नाता,
नहीं तुम्हारा मेरा केवल,
जग-जीवन से मेल कराता।

(२)

दुनिया अपनी, जीवन अपना,
सत्य, नहीं केवल मन-सपना;
मन-सपने-सा इसे बनाने
का, आओ, हम-तुम प्रण ठानें ।

(३)

जैसी हमने पाई दुनिया,
आओ, उससे बेहतर छोड़ें,
शुचि-सुंदरतर इसे बनाने
से मुँह अपना कभी न मोड़ें ।

(४)

क्योंकि नहीं बस इससे नाता
जब तक जीवन-काल हमारा,
खेल, कूद, पढ़, बढ़ इसमें ही
रहने को है लाल हमारा ।

६—साधना

(१)

मिल गया माँगा बहुत कुछ
पर कहाँ संतोप मन में,
दोष दुनिया का नहीं है
यदि कहीं तो, दोप मन में;

पूर्ण अभिलापा पुरानी
आज भी लगने लगी है,

नवल स्वप्नों के लिए
भरने लगा है जोश मन में;

लालसाएँ ले यही
वरदान या अभिशाप आईं—
एक फल दे, दूसरी नव अंकुरित हो।

(२)

देख सकता स्वप्न मैं इस
बात का है हर्ष मुझको,
मोह सकता आज भी जग
का नया उत्कर्ष मुझको,

कम नहीं देखी जगत की
निम्नता, कटुता, कुटिलता,

किंतु अपनी ओर फिर भी
खींचते आदर्श मुझको,

जो कि जीने-योग्य, मरने-
योग्य जीवन को बनाते,
अस्त जो होते नहीं मन में उदित हो।

(३)

रख चला आदर्श ऊँचा
है नहीं पछताव इसपर,
शक्तियाँ अपनी न जाँचीं
है नहीं इसका मुझे डर,

दूर अपने ध्येय से हूँ,
लाज इसकी भी नहीं है,

क्योंकि अपनी साधना में
हूँ रहा सब काल तत्पर,

और तत्पर ही रहूँगा
क्योंकि तुम हो साथ मेरे;

मैं अथक संघर्ष, तुम आशा अजित हो !
मैं अटल संकल्प, तुम श्रद्धा अमित हो !

७–विश्वास

(१)

पंथ जीवन का चुनौती
दे रहा है हर क़दम पर,
आख़िरी मंज़िल नहीं होती
कहीं भी दृष्टिगोचर,

धूलि से लद, स्वेद से सिंच
हो गई है देह भारी,

कौन - सा विश्वास मुझको
खींचता जाता निरंतर ?—

पंथ क्या, पथ की थकन क्या,
स्वेद कण क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं।

(२)

एक भी संदेश आशा,
का नहीं देते सितारे,
प्रकृति ने मंगल शकुन पथ
में नहीं मेरे सँवारे,

विश्व का उत्साह वर्धक
शब्द भी मैंने सुना कब,

किंतु बढ़ता जा रहा हूँ
लक्ष्य पर किसके सहारे ?—

विश्व की अवहेलना क्या,
अपशकुन क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं।

(३)

चल रहा है पर पहुँचना
लक्ष्य पर इसका अनिश्चित,
कर्म कर भी कर्म फल से
यदि रहा यह पांथ वंचित,

विश्व तो उसपर हँसेगा
ख़ूब भूला, ख़ूब भटका!

किंतु गा यह पंक्तियाँ दो
वह करेगा धैर्य संचित:—

व्यर्थ जीवन, व्यर्थ जीवन
की लगन क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं!

(४)

अब नहीं उस पार का भी
भय मुझे कुछ भी सताता,
उस तरफ़ के लोक से भी
जुड़ चुका है एक नाता,

मैं उसे भूला नहीं तो
वह नहीं भूली मुझे भी,

मृत्यु-पथ पर भी बढ़ूँगा
मोद से यह गुनगुनाता—

अंत यौवन, अंत जीवन
का, मरण क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं!

समाप्त